



2026:AHC:60135-DB

प्रकाशनार्थ स्वीकृत

05.02.2026 को निर्णय सुरक्षित

24.03.2026 को निर्णय पारात

उच्च न्यायालय इलाहाबाद

रिट - सी संख्या- 37 वर्ष 2026

सिविल न्यायालय बार एसोसिएशन एवं एक अन्य

.....याचिकाकर्ता(गण)

बनाम

इलाहाबाद उच्च न्यायालय एवं 3 अन्य एवं 15 अन्य

.....प्रत्यर्थी(गण)

याचिकाकर्ता(गण) के अधिवक्ता

: संतोष कुमार मिश्रा, विनय कुमार मिश्रा

प्रत्यर्थी(गण) के अधिवक्ता

: चंदन शर्मा, आशीष मिश्रा, मुख्य स्थायी अधिवक्ता

और 1 संबंधित वाद

न्यायालय संख्या-1

माननीय न्यायमूर्ति अजीत कुमार

माननीय न्यायमूर्ति स्वरूपमा चतुर्वेदी

(द्वारा : न्यायमूर्ति स्वरूपमा चतुर्वेदी)

1. आज प्रस्तुत निर्देशों को अभिलेख पर लिया गया।

2. याचिकाकर्ता के लिए विद्वान अधिवक्ता, श्री संतोष कुमार मिश्रा, के लिए विद्वान अधिवक्ता श्री प्रमोद पाठक, श्री हरि नारायण सिंह, संबंधित वाद में याचिकाकर्ता के लिए उपस्थित विद्वान अधिवक्ता, श्री चंदन शर्मा और प्रत्यर्थीगण के लिए उपस्थित विद्वान अधिवक्ता श्री राहुल श्रीवास्तव, क्रमशः को सुना गया।

3. सिविल न्यायालय बार एसोसिएशन, महाराजगंज द्वारा दायर रिट याचिका संख्या 37/2026, प्रत्यर्थी संख्या 3, प्रधान न्यायाधीश, परिवार न्यायालय, महाराजगंज, द्वारा पारित प्रशासनिक आदेश दिनांक 08.12.2025 एवं प्रत्यर्थी संख्या 2, जनपद न्यायाधीश महाराजगंज, का संस्तुति आदेश दिनांक 08.12.2025, जिनके द्वारा वादों को ग्राम न्यायालय नौतनवा एवं निचलौल, जनपद

अस्वीकरण: अनुवादित निर्णय वादी के समझने हेतु है और इसका किसी अन्य उद्देश्य के लिए प्रयोग नहीं किया जा सकता है। सभी कानूनी और सरकारी उद्देश्यों के लिए, निर्णय का मूल संस्करण ही मान्य होगा।



महाराजगंज में स्थानांतरित कर दिया गया, को रद्द करने के लिए उत्प्रेषण की प्रकृति की प्रार्थना के साथ दायर किया गया था।

4. संबद्ध रिट याचिका संख्या 42218 वर्ष 2025 बार एसोसिएशन, सिविल न्यायालय, गोरखपुर द्वारा जनपद न्यायाधीश, गोरखपुर के कार्यालय द्वारा पारित प्रशासनिक आदेश संख्या 162/2025/गोरखपुर/दिनांकित 23 सितम्बर, 2025 को निरस्त करने हेतु उत्प्रेषण की प्रकृति में निदेश जारी करने तथा प्रधान न्यायाधीश, परिवार न्यायालय द्वारा पारित प्रशासनिक आदेश दिनांक 07.10.2025 को भी निरस्त करने की प्रार्थना के साथ दाखिल किया गया था।

5. चूंकि दोनों रिट याचिकाएं परिवार न्यायालयों से ग्राम न्यायालयों में भरण-पोषण की कार्यवाहियों को अंतरित करने का निर्देश देने वाले समान प्रशासनिक आदेशों को चुनौती देती हैं, इसलिए पक्षकारों की सहमति से उनकी एक साथ सुनवाई की गई तथा इस उभयनिष्ठ निर्णय द्वारा उनका निस्तारण किया जा रहा है। हालांकि, स्पष्टता की दृष्टि से, जहां भी आवश्यक है, प्रत्येक याचिका के तथ्यात्मक ढांचे को पृथक रूप से संज्ञान में लिया गया है।

6. दोनों याचिकाओं के सारवान् तथ्य निर्विवाद हैं। यह तथ्य की बात है कि ग्राम न्यायालय अधिनियम, 2008 को जमीनी स्तर पर न्याय तक पहुँच प्रदान करने के विधायी उद्देश्य से अधिनियमित किया गया था। अधिनियम की धारा 12(1)(ख), प्रथम अनुसूची के भाग II के बिंदु (v) के साथ पठित, ग्राम न्यायालयों को दंड प्रक्रिया संहिता के अध्याय IX (धारा 125 से 128) एवं भारतीय नागरिक सुरक्षा संहिता [मूल पाठ में: भारतीय न्याय सुरक्षा संहिता] के अध्याय X (धारा 144 से 147) के अधीन उत्पन्न भरण-पोषण के दावों को ग्रहण करने में समर्थ बनाती है। यह भी स्पष्ट है कि अधिनियम की धारा 16 जिला न्यायाधीश को लंबित कार्यवाहियों के अंतरण का आदेश देने के लिए सशक्त करती है, तथा धारा 18 आपराधिक वादों के संबंध में एक अध्यारोही उपबंध प्रदान करती है। इसके साथ ही, परिवार न्यायालय अधिनियम, 1984 पारिवारिक विवादों के न्यायनिर्णयन हेतु एक विशेष मंच का प्रावधान करता है। धारा 7 के अधीन, परिवार न्यायालय दंड प्रक्रिया संहिता के अध्याय IX के तहत प्रथम वर्ग मजिस्ट्रेट के समान क्षेत्राधिकार का प्रयोग करता है, जबकि धारा 8 इसके क्षेत्र में आने वाले मामलों के संबंध में अन्य न्यायालयों के क्षेत्राधिकार को स्पष्ट रूप से अपवर्जित करती है। दोनों विधानों के बीच एक उल्लेखनीय और निर्विवाद अंतर अपीलीय ढांचे में निहित है, जहाँ परिवार न्यायालय अधिनियम की धारा 19 सीधे उच्च न्यायालय में अपील का प्रावधान करती है, वहीं ग्राम न्यायालय अधिनियम की धारा 33 सत्र

अस्वीकरण: अनुवादित निर्णय वादी के समझने हेतु है और इसका किसी अन्य उद्देश्य के लिए प्रयोग नहीं किया जा सकता है। सभी कानूनी और सरकारी उद्देश्यों के लिए, निर्णय का मूल संस्करण ही मान्य होगा।



न्यायालय में अपील की परिकल्पना करती है, जिसका निर्णय संवैधानिक उपचारों के अध्यधीन रहते हुए अंतिम रूप प्राप्त करता है।

7. याचिकाकर्तागण के विद्वान अधिवक्ता ने बलपूर्वक यह तर्क दिया है कि आक्षेपित प्रशासनिक आदेश पूर्णतः मनमाने, अति-अधिकारितायुक्त तथा दोनों विधानों के अंतर्निहित विधायी आशय के विपरीत हैं। यह तर्क दिया गया कि परिवार न्यायालय अधिनियम एक विशेष विधान है जो पारिवारिक विवादों के लिए एक अनन्य मंच का सृजन करता है और इसलिए, ऐसे न्यायालय में एक बार निहित हुई अधिकारिता को प्रशासनिक निर्देशों द्वारा छीना नहीं जा सकता था। अपीलीय संरचनाओं में अंतर पर जोर देते हुए यह निवेदन किया गया कि परिवार न्यायालयों से ग्राम न्यायालयों में कार्यवाहियों का अंतरण उच्च न्यायालय में अपील करने के एक मूल्यवान सांविधिक अधिकार से वंचित करता है और वादकारियों को एक भिन्न तथा सीमित अपीलीय मंच पर धकेल देता है।

8. उन्होंने तर्क दिया कि दोनों विधान भिन्न और पृथक क्षेत्रों में कार्य करते हैं, तथा इनका उद्देश्य कभी भी एक-दूसरे से आच्छादित होना नहीं था। याचिकाकर्तागण ने तर्क प्रस्तुत किया कि ग्राम न्यायालय अधिनियम, 2008 भरण-पोषण के आदेशों, विशेष रूप से दंड प्रक्रिया संहिता के अध्याय IX के अधीन परिकल्पित आदेशों के प्रभावी प्रवर्तन के लिए एक पूर्ण या स्व-पूर्ण तंत्र निर्धारित नहीं करता है।

9. उन्होंने आगे तर्क दिया कि आक्षेपित आदेश मुख्य रूप से महानिबंधक के दिनांक 16.12.2021 के पत्र में परिलक्षित प्रशासनिक दृष्टिकोण के आधार पर पारित किए गए थे। उस पत्राचार में यह सुझाव दिया गया था कि ग्राम न्यायालय अधिनियम का अध्यारोही प्रभाव होगा और ग्राम न्यायालय भरण-पोषण के प्रकरणों पर अनन्य क्षेत्राधिकार का प्रयोग करेंगे। उन्होंने ध्यान दिलाया कि उक्त पत्र बदायूं और सीतापुर के विशिष्ट अभ्यावेदनों के उत्तर में जारी किया गया था और यह केवल स्पष्टीकरण की प्रकृति का था। इसे विधि का कोई बाध्यकारी सिद्धांत निर्धारित करने वाला अथवा क्षेत्राधिकार का स्रोत नहीं माना जा सकता था। याचिकाकर्तागण ने इस बात पर बल दिया कि प्रशासनिक पत्राचार मौजूदा विधियों के तहत परिकल्पित क्षेत्राधिकार संबंधी योजना को परिवर्तित नहीं कर सकता है।



10. दूसरी ओर, प्रत्यर्थागण के विद्वान अधिवक्ता ने यह प्रस्तुत करते हुए आक्षेपित आदेशों का समर्थन किया कि ग्राम न्यायालय अधिनियम, 2008 एक हितकारी विधान है, जिसका उद्देश्य न्याय प्रदान करने की प्रणाली का विकेंद्रीकरण करना तथा जमीनी स्तर पर सस्ता और त्वरित उपचार प्रदान करना है। उन्होंने तर्क दिया कि धारा 12, प्रथम अनुसूची के साथ पठित, भरण-पोषण की कार्यवाहियों को स्पष्ट रूप से ग्राम न्यायालयों की क्षेत्राधिकार के अंतर्गत लाती है तथा धारा 16 स्पष्ट रूप से लंबित मामलों के अंतरण को अधिकृत करती है। उन्होंने तर्क दिया कि ग्राम न्यायालय अधिनियम, 2008 का अध्याय (IV) आपराधिक वादों में प्रक्रिया का प्रावधान करता है। उन्होंने अपने तर्कों को संबल देने के लिए धारा 18 पर भी भरोसा जताया, जिसे सुलभ संदर्भ हेतु नीचे पुनः प्रस्तुत किया जा रहा है:

“18. आपराधिक विचारण में अधिनियम का अध्यारोही प्रभाव.- इस अधिनियम के उपबंध दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 (2 वर्ष 1974) या किसी अन्य विधि में किसी बात के होते हुए भी प्रभावी होंगे, किन्तु इस अधिनियम में अभिव्यक्त रूप से जैसा उपबंधित है उसके सिवाय, संहिता के उपबंध, जहाँ तक वे इस अधिनियम के उपबंधों से असंगत न हों, ग्राम न्यायालय के समक्ष कार्यवाहियों पर लागू होंगे; और संहिता के उक्त उपबंधों के प्रयोजन के लिए, ग्राम न्यायालय को प्रथम वर्ग न्यायिक मजिस्ट्रेट का न्यायालय समझा जाएगा।”

11. विद्वान अधिवक्ता ने तर्क दिया कि याचिकाकर्तागण ने ग्राम न्यायालय अधिनियम, 2008 और परिवार न्यायालय अधिनियम, 1984 के उपबंधों को चुनौती दिए बिना आनुषंगिक प्रशासनिक आदेशों को चुनौती दिया है। उन्होंने आगे तर्क दिया कि ग्राम न्यायालय अधिनियम, 2008 के प्रवर्तन के पश्चात, अधिनियम के उपबंधों के अनुसार ग्राम न्यायालयों को सिविल एवं आपराधिक अधिकारिता प्रदान की गई है। उन्होंने उत्तर प्रदेश ग्राम न्यायालय (प्रक्रिया और व्यवहार) नियमावली, 2009 के नियम 30 का संदर्भ दिया, जिसमें यह उपबंध है कि ग्राम न्यायालय को उसकी अधिकारिता के अंतर्गत आने वाले और उसे विशेष रूप से प्रदत्त मामलों के संबंध में अनन्य क्षेत्राधिकार प्राप्त होगा।

12. पक्षकारों के विद्वान अधिवक्ता को सुनने तथा अभिलेख का परिशीलन करने के पश्चात, विचारणीय प्रश्न यह उठता है कि क्या किसी सांविधिक उपबंध के अधीन पारित आदेश को उस उपबंध की वैधता या अति-अधिकारिता को चुनौती दिए बिना आक्षेपित किया जा सकता है, तथा क्या परिवार न्यायालय अधिनियम, 1984 के अधीन गठित परिवार न्यायालय के समक्ष लंबित

अस्वीकरण: अनुवादित निर्णय वादी के समझने हेतु है और इसका किसी अन्य उद्देश्य के लिए प्रयोग नहीं किया जा सकता है। सभी कानूनी और सरकारी उद्देश्यों के लिए, निर्णय का मूल संस्करण ही मान्य होगा।



भरण-पोषण की कार्यवाही को ग्राम न्यायालय अधिनियम, 2008 की धारा 16 के अधीन शक्तियों के प्रयोग में ग्राम न्यायालय में अंतरित किया जा सकता है।

13. अवधारण हेतु प्रस्तुत प्रश्न पर दोनों विधानों एवं उनके संबंधित कार्य-क्षेत्रों को नियंत्रित करने वाले सांविधिक ढांचे के आलोक में विचार किया जाना आवश्यक है, और ऐसे विचार के उपरांत, हम पाते हैं कि परिवार न्यायालय अधिनियम, 1984 एवं ग्राम न्यायालय अधिनियम, 2008 दोनों ही पृथक एवं सुस्पष्ट सीमाओं में संचालित होने वाले विशेष विधान हैं। इन दोनों विधानों के बीच किसी भी संभावित आच्छादन का निवारण सामंजस्यपूर्ण अर्थान्वयन के सिद्धांत को लागू करके किया जाना आवश्यक है, ताकि यह सुनिश्चित किया जा सके कि किसी भी विधान को निरर्थक/व्यर्थ किए बिना दोनों विधानों को पूर्ण प्रभाव दिया जा सके।

14. परिवार न्यायालय अधिनियम, 1984 को लाने का उद्देश्य विवाह तथा पारिवारिक मामलों से संबंधित विवादों और उससे संसक्त विषयों में सुलह को बढ़ावा देने एवं त्वरित निपटारा सुनिश्चित करने के विचार से परिवार न्यायालय की स्थापना का उपबंध करने हेतु एक अधिनियम बनाना है। 1984 के अधिनियम की धारा 7 परिवार न्यायालय का क्षेत्राधिकार प्रदान करता है, जबकि अपील का उपबंध धारा 19 में अंतर्विष्ट है जो यह उल्लेख करता है कि परिवार न्यायालय के किसी निर्णय और आदेश से, जो अंतरवर्ती आदेश न हो, तथ्यों एवं विधि के आधार पर उच्च न्यायालय में अपील होगा।

15. ग्राम न्यायालय अधिनियम, 2008 को अधिनियमित करने के पीछे का उद्देश्य नागरिकों को उनके द्वार पर न्याय तक पहुँच प्रदान करने तथा यह सुनिश्चित करने के प्रयोजनार्थ जमीनी स्तर पर ग्राम न्यायालय की स्थापना करना है कि सामाजिक, आर्थिक या अन्य अक्षमताओं के कारण किसी भी नागरिक को न्याय प्राप्त करने के अवसर से वंचित न किया जाए, एवं उससे संसक्त या उसके समरूप विषयों के लिए प्रावधान करना है। अधिनियम ने ग्राम न्यायालय की क्षेत्राधिकार, शक्तियों और प्राधिकारों का उपबंध करने हेतु विस्तृत प्रावधान किए हैं।

16. आपराधिक क्षेत्राधिकार के संबंध में धारा 12 प्रावधान करती है, जबकि धारा 13 ग्राम न्यायालय की सिविल अधिकारिता का उपबंध करती है। धारा 12(1)(ख) यह उपबंध करती है कि ग्राम न्यायालय किसी परिवाद पर या पुलिस रिपोर्ट पर किसी अपराध का संज्ञान ले सकता है तथा उन सभी अपराधों का विचारण करेगा एवं राहत प्रदान करेगा, यदि कोई हो, जो उस अनुसूची के भाग



॥ में शामिल अधिनियमों के अंतर्गत निर्दिष्ट हैं। प्रथम अनुसूची के भाग ॥ के अंतर्गत बिंदु (v) दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 के अध्याय IX के तहत पत्नियों, बच्चों और माता-पिता के भरण-पोषण के आदेश से संबंधित है। अधिनियम की धारा 16 जनपद न्यायाधीश या सत्र न्यायालय द्वारा ऐसे वादों का विचारण या निस्तारण करने के लिए सक्षम ग्राम न्यायालय को लंबित कार्यवाहियों के अंतरण का उपबंध करती है। अधिनियम की धारा 18 आपराधिक विचारण में अधिनियम के अध्यारोही प्रभाव का उपबंध करती है।

17. अधिनियम, 2009 के अध्याय VII के तहत प्रावधान अपील का प्रावधान करते हैं। अधिनियम, 2009 की धारा 33 आपराधिक मामलों में अपील का प्रावधान करती है और यह प्रदान करती है कि ग्राम न्यायालय के किसी भी निर्णय, दण्ड या आदेश के विरुद्ध अपील सत्र न्यायालय में की जा सकती है। यह भी कहा गया है कि सत्र न्यायालय का निर्णय अंतिम होगा क्योंकि सत्र न्यायालय के निर्णय पर पुनरीक्षण की कोई अपील नहीं की जाएगी। हालाँकि धारा के उपबंध में यह प्रावधान है कि इस उपधारा में कोई भी बात किसी भी व्यक्ति को भारत के संविधान के अनुच्छेद 32 और अनुच्छेद 226 के अंतर्गत उपलब्ध न्यायिक उपचार का लाभ उठाने से नहीं रोकेगी। दूसरे शब्दों में, अधिनियम ग्राम न्यायालय के निर्णय और आदेश के विरुद्ध सत्र न्यायालय में अपील करने का प्रावधान करता है और बाद में पीड़ित पक्ष अनुच्छेद 226 के अंतर्गत उच्च न्यायालय का दरवाजा भी खटखटा सकता है, इसलिए, प्रत्येक वाद में कार्यवाही के लिए पक्षों के अधिकारों की सुरक्षा की एक परत होती है।

18. दोनों अधिनियमों के सावधानीपूर्वक अध्ययन के बाद, हमारा विचार है कि दोनों संविधियों के पीछे विधायी मंशा वादकारों को अनुकूल और आसानी से सुलभ न्यायिक न्यायाधिकरण प्रदान करना है, जैसा कि ग्राम न्यायालय अधिनियम, 2008 की धारा 9 और परिवार न्यायालय अधिनियम, 1984 की रूपरेखा से प्रमाणित है। इसे इस बात से भी समर्थन मिलता है कि सामाजिक-आर्थिक और भौगोलिक बाधाओं के उन्मूलन के लिए न्यायिक कार्यवाही को वादकारियों के दरवाजे तक लाया जाए। यदि दोनों नियमों की सामंजस्यपूर्ण प्रक्रिया से व्याख्या की जाए, तो कोई विवाद नहीं है और दोनों पारिवारिक विवादों वाले वादियों को अधिक अनुकूल वातावरण प्रदान करने के लिए उठाए गए अलग-अलग कदम हैं, जहां पहले मध्यस्थता और समाधान करने का प्रयास किया जाता है, जिसके लिए एक मित्रतापूर्ण वातावरण की आवश्यकता होती है।



19. लेकिन उस स्थिति में भी जहां दो विधानों, वह भी विशेष विधानों का विश्लेषण किया जाना है, तो सूक्ति "लेजेस पोस्टीरियरेस प्रायोरेस कॉन्ट्रारियास एब्रॉगेंट" (पश्चात्पूर्वी विधान पूर्ववर्ती असंगत विधानों का निरसन करता है) एक वैधानिक व्याख्या का एक सुस्थापित नियम है, जिसे समझा जाना चाहिए कि जहां भी दो अधिनियम अत्यंत विरोधी रूप से असंगत हैं, बाद के अधिनियम को ऐसी असंगतता की सीमा तक प्रबल होना चाहिए। अंतर्निहित तर्क विधायी प्रयोजन पर आधारित है क्योंकि विधायिका को, विद्यमान नियम के बारे में पता होने के नाते, यह माना जाता है कि उसने जानबूझकर बाद के नियम को संशोधित करने, अधिभावी करने या पहले के प्रावधान को प्रतिस्थापित करने के लिए अधिनियमित किया है। इस प्रकार, बाद का नियम विधायी प्रयोजन की सबसे अभिनव अभिव्यक्ति का प्रतिनिधित्व करता है और उसे तदनुसार प्रभाव दिया जाना चाहिए।

20. यद्यपि सबसे पहले सामंजस्यपूर्ण निर्माण से समस्या का समाधान हो जाता है, लेकिन याचिकाकर्ताओं ने अधिनियम के प्रावधानों को चुनौती दिए बिना, ग्राम न्यायालय और परिवार न्यायालय द्वारा पारित आदेशों के विरुद्ध विभिन्न अपील मंचों का मामला उठाया, इसलिए यह चर्चा जरूरी है। हालाँकि, न्यायालय को इस सिद्धांत को लागू करने से पहले सावधानी बरतनी चाहिए, और दोनों संविधियों के प्रावधानों में सामंजस्य स्थापित करने का हर संभव प्रयास किया जाना चाहिए। निहितार्थ द्वारा निरसन का आसानी से अनुमान नहीं लगाया जा सकता है जब तक कि असंगतता प्रत्यक्ष, अपूरणीय न हो और ऐसी न हो कि दोनों नियम एक साथ खड़े न हो सकें या एक साथ प्रभाव न दे सकें। केवल जब सामंजस्यपूर्ण निर्माण विफल हो जाता है, और प्रावधान इतने विरोधाभासी होते हैं कि एक का अनुपालन अनिवार्य रूप से दूसरे का उल्लंघन होगा, क्या निहित निरसन का सिद्धांत लागू होता है, जिससे बाद के अधिनियम को प्राथमिकता मिलती है।

21. संक्षेप में, यह सूक्ति अंतिम उपाय के नियम के रूप में कार्य करती है, जिसे केवल तभी लागू किया जाता है जब सुलह असंभव सिद्ध हो जाती है। इसका आवेदन विरोधाभासी आदेशों को सह-अस्तित्व से रोककर विधिक प्रणाली में सुसंगतता सुनिश्चित करता है, साथ ही नवीनतम विधायी प्रयोजन की सर्वोच्चता का सम्मान भी करता है। उपरोक्त सिद्धांत महत्व रखता है जहां दो विशेष संविधि एक ही क्षेत्र में काम करते हैं और परस्पर विरोधी प्रावधान होते हैं, प्राथमिकता के प्रश्न को केवल किसी भी अधिनियम की विशेष प्रकृति का आह्वान करके हल नहीं किया जा सकता है और ऐसी परिस्थितियों में, बाद के विशेष संविधि को प्राथमिकता दी जानी चाहिए।



22. **सॉलिडियर इंडिया लिमिटेड बनाम फेयरग्रोथ फाइनेंशियल सर्विसेज लिमिटेड, (2001) 3 एससीसी 71** में सर्वोच्च न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया है कि:

"9. यह स्पष्ट है कि ये दोनों अधिनियम विशेष अधिनियम हैं। इस न्यायालय ने बिना किसी अनिश्चित शर्तों के कहा है कि ऐसी स्थिति में यह बाद का अधिनियम है जो प्रबल होना चाहिए। उपरोक्त संदर्भ में उद्धृत निर्णय इस प्रकार हैं: महाराष्ट्र ट्यूब्स लिमिटेड बनाम स्टेट इंडस्ट्रियल एंड इन्वेस्टमेंट कॉर्पोरेशन ऑफ महाराष्ट्र लिमिटेड [(1993) 2 एससीसी 144]; सरवन सिंह बनाम कस्तूरी लाल [(1977) 1 एससीसी 750: (1977) 2 एससीआर 421] ; इलाहाबाद बैंक बनाम केनरा बैंक [(2000) 4 एससीसी 406] और राम नारायण बनाम शिमला बैंकिंग एंड इंडस्ट्रियल कंपनी लिमिटेड [एआईआर 1956 एससी 614: 1956 एससीआर 603]।

10. हम देख सकते हैं कि विशेष न्यायालय ने एक अन्य वाद में इसी तरह के विवाद का निपटारा किया था। भोरुका स्टील लिमिटेड बनाम फेयरग्रोथ फाइनेंशियल सर्विसेज लिमिटेड [(1997) 89 कॉम्प कैस 547 (विशेष न्यायालय)] में यह तर्क दिया गया था कि 1985 अधिनियम के प्रावधानों को ध्यान में रखते हुए विशेष न्यायालय अधिनियम के तहत वसूली प्रक्रिया पर रोक लगाई जानी चाहिए। इस तर्क को अस्वीकार करते हुए, विशेष न्यायालय इस निष्कर्ष पर पहुंचा था कि बाद में अधिनियमित होने के कारण विशेष न्यायालय अधिनियम प्रभावी रहेगा। हेडनोट जो उक्त निर्णय के अनुपात को संक्षेप में सामने लाता है वह इस प्रकार है:

"जहां दो विशेष संविधि हैं जिनमें गैर-प्रमुख खंड शामिल हैं, बाद के संविधि को प्रभावी होना चाहिए। ऐसा इसलिए है क्योंकि बाद के संविधि के अधिनियमन के समय, विधानमंडल को पहले के विधान और उसके गैर-विषयक खंड के बारे में पता था। यदि विधायिका अभी भी बाद के अधिनियम को एक गैर-विषयक खंड के साथ प्रदान करती है, तो इसका मतलब है कि विधायिका चाहती थी कि वह अधिनियम लागू हो। यदि विधायिका नहीं चाहता है कि बाद का अधिनियम लागू हो, तो वह बाद में प्रावधान कर सकता है और अधिनियमित करेगा कि पिछले अधिनियम के प्रावधान लागू रहेंगे।"



23. बाद के विधान पर भरोसा करने के इस सिद्धांत का सर्वोच्च न्यायालय द्वारा पालन जारी रखा गया, जैसा कि **केएसएल एंड इंडस्ट्रीज लिमिटेड बनाम अरिहंत थ्रेड्स लिमिटेड, (2015) 1 एससीसी 166** में देखा जा सकता है:

"47. बाद के एक वाद में [सॉलिडेयर इंडिया लिमिटेड बनाम फेयरग्रोथ फाइनेंशियल सर्विसेज लिमिटेड, (2001) 3 एससीसी 71] विशेष न्यायालय (प्रतिभूतियों में लेनदेन से संबंधित अपराधों का परीक्षण) अधिनियम, 1992 और एसआईसीए के संदर्भ में प्रश्न उठा। यह तर्क दिया गया कि एसआईसीए में निहित विशेष प्रावधानों के मद्देनजर विशेष न्यायालय अधिनियम के तहत कोई कार्यवाही शुरू नहीं की जा सकती थी। न्यायालय ने पाया कि यद्यपि एसआईसीए की धारा 32 में एक गैर-अवरोधक खंड था, विशेष न्यायालय अधिनियम की धारा 13 में भी एक समान गैर-अवरोधक खंड था। न्यायालय ने कहा: (सॉलिडेयर केस [सॉलिडेयर इंडिया लिमिटेड बनाम फेयरग्रोथ फाइनेंशियल सर्विसेज लिमिटेड, (2001) 3 एससीसी 71], एससीसी पी. 73, प्रस्तर 9) "9. "इस न्यायालय ने बिना किसी अनिश्चित शर्तों के कहा है कि ऐसी स्थिति में यह बाद का अधिनियम है जिसे प्रभावी होना चाहिए।"

24. वाद के तथ्यों में, याचिकाकर्ताओं के साथ-साथ प्रत्यर्थीगण की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता ने **श्रीमती सिया दुलारी बनाम अवध नरेश, तटस्थ उद्धरण संख्या- 2024:एचसी:42475** में इस न्यायालय के निर्णय पर भरोसा जताया, जिसके विरुद्ध बार एसोसिएशन एत्मादपुर, आगरा द्वारा सर्वोच्च न्यायालय के समक्ष विशेष अनुमति याचिका (सिविल) डायरी संख्या 47561/2024 दायर किया गया था, लेकिन इसे सर्वोच्च न्यायालय के दिनांक 07.02.2025 के आदेश के तहत वापस ले लिया गया था, लेकिन इसी मामले में प्रत्यर्थी द्वारा उच्च न्यायालय के समक्ष दायर एक अन्य विशेष अनुमति याचिका (सिविल) डायरी संख्या 49860/2024 अभी भी उच्च न्यायालय के आदेश पर बिना किसी स्थगन आदेश के लंबित है।

25. याचिकाकर्ता द्वारा **सिया दुलारी (पूर्वोक्त)** में इस न्यायालय के निर्णय पर लगाए गए स्थानांतरण आदेशों पर भरोसा करना गलत है। उपरोक्त निर्णय स्थापित सिद्धांत को दोहराता है कि क्षेत्राधिकार अधिनियम द्वारा बनाया जाना है और इसे प्रशासनिक निर्देशों या हस्तांतरण के आदेशों द्वारा प्रदान या ग्रहण नहीं किया जा सकता है। इसमें आगे कहा गया है कि ग्राम न्यायालय का क्षेत्राधिकार अधिनियम की अनुसूची में उल्लिखित मामलों तक ही सीमित है, और ऐसी वैधानिक सीमाओं से परे कोई भी निर्णय विधि की दृष्टि में अमान्य होगा। हालाँकि, निर्णय यह नहीं कहता

अस्वीकरण: अनुवादित निर्णय वादी के समझने हेतु है और इसका किसी अन्य उद्देश्य के लिए प्रयोग नहीं किया जा सकता है। सभी कानूनी और सरकारी उद्देश्यों के लिए, निर्णय का मूल संस्करण ही मान्य होगा।



है कि ग्राम न्यायालय अधिनियम की धारा 16 के अंतर्गत शक्ति का प्रयोग स्वयं अनुमति योग्य नहीं है, बल्कि यह स्पष्ट करता है कि क्षेत्राधिकार का मामला स्थानान्तरित न्यायालय के समक्ष परीक्षण के लिए खुला है। इसलिए, इस निर्णय के अनुसार, स्थापित विधिक स्थिति यह है कि स्थानान्तरण नियम के अनुसार किया जा सकता है।

26. यह ध्यान रखना भी महत्वपूर्ण है कि याचिकाकर्ताओं ने ग्राम न्यायालय अधिनियम, 2008 के प्रावधानों को चुनौती नहीं दिया गया है, विशेष रूप से धारा 12, 16 एवं 18 को, जो ऐसी कार्यवाही पर विचार करने और स्थानान्तरण को प्रभावित करने की शक्ति का स्रोत हैं। वैधानिक प्रावधानों की प्रकृति या प्रयोज्यता के लिए किसी चुनौती के अभाव में, इसके तहत की गई कार्रवाई की वैधता पर विलगता में चुनौती नहीं दी जा सकती है। यह एक सुस्थापित विधिक सिद्धांत है कि जहां कोई प्रशासनिक या परिणामी कार्रवाई किसी वैधानिक प्रावधान पर आधारित होती है, उसे पहले वैधानिक आधार को हटाए बिना अपास्त नहीं किया जा सकता है। अधिनियम में प्रदान की गई शक्तियों का प्रयोग करते हुए पारित किए गए आक्षेपित आदेशों को क्षेत्राधिकार के बिना नहीं कहा जा सकता है, जिससे संविधान के अनुच्छेद 226 के अंतर्गत हस्तक्षेप की आवश्यकता हो।

27. इस दृष्टिकोण को विभिन्न निर्णयों में समर्थन मिलता है, जिसमें **वी.के. मजोत्रा बनाम भारत संघ, (2003) 8 एससीसी 40** में सर्वोच्च न्यायालय का निर्णय भी शामिल है, जिसमें न्यायिक समीक्षा की सीमा और वैधानिक प्रावधानों के विपरीत दिशा-निर्देश जारी करने की अनुचितता पर उनके अधिकारों को चुनौती दिए बिना चर्चा की गई है और फिर यह अभिनिर्धारित किया गया कि:

“8. हमने रिट याचिका के अभिवचन और उच्च न्यायालय के समक्ष प्रत्यर्थीगण द्वारा दायर प्रति-शपथपत्र का अध्ययन किया है। पक्षों के अधिवक्ता यह कहने में सही हैं कि जिस बिंदु पर रिट याचिका का निस्तारण किया गया है, वह पक्षों द्वारा अपने अभिवचनों में नहीं उठाया गया था। उच्च न्यायालय द्वारा तय किए गए बिंदु पर पक्ष एकमत नहीं थे। पक्षों के अधिवक्ता भी यह तर्क देने में सही हैं कि रिट याचिका में उठाए गए बिंदु पर उच्च न्यायालय द्वारा न तो विचार किया गया और न ही उस पर निर्णय दिया गया। यह भी सही है कि अधिनियम की धारा 6(2)(बी), (बीबी) और (सी) की शर्तों को रिट याचिका में चुनौती नहीं दी गई थी। उच्च न्यायालय द्वारा जारी किए गए निर्देश का प्रभाव कि अब से उपाध्यक्ष के पद पर नियुक्ति केवल मौजूदा या सेवानिवृत्त उच्च न्यायालय के न्यायाधीश या उच्च न्यायालय के न्यायाधीश के रूप में नियुक्त होने के लिए योग्य अधिवक्ता में से



की जाएगी, प्रशासनिक सेवाओं के बीच से उपाध्यक्ष के पद पर भर्ती के लिए प्रदान करने वाले अधिनियम की धारा 6 (2) (बी), (बीबी) और (सी) को नियुक्ति के बिना ही नियमसंग्रह से मिटा दिया गया / पूरी तरह नष्ट कर दिया गया जो खंड (बी), (बीबी) और (सी) में उल्लिखित श्रेणियों में से अब बनाया जा सकता है। जब तक धारा 6(2)(बी), (बीबी) और (सी) नियमसंग्रह पर रहेगी तब तक उच्च न्यायालय द्वारा ऐसा निर्देश जारी नहीं किया जा सकता है। उच्च न्यायालय के विद्वान न्यायाधीशों के संबंध में, हम कहेंगे कि विद्वान न्यायाधीशों ने बहस के दौरान पक्षों द्वारा उठाए गए तर्कों या बिंदुओं से परे दिशा देने में अपने क्षेत्राधिकार का उल्लंघन किया है। रिट न्यायालयों को याचिका में उठाए गए बिंदुओं पर निर्णय लेने का परामर्श दिया जाएगा और यदि किसी दुर्लभ मामले में बाद के तथ्यों और परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए कोई अतिरिक्त बिंदु उठाया जाना है तो नैसर्गिक न्याय के सिद्धांतों को संतुष्ट करने के लिए संबंधित और प्रभावित पक्षों को अतिरिक्त बिंदुओं पर ध्यान देना चाहिए। पक्षों को आश्चर्यचकित नहीं किया जा सकता। हम चर्चा यहीं छोड़ते हैं।"

28. उपरोक्त सिद्धांत को सर्वोच्च न्यायालय ने **एडुकंती किस्तम्मा बनाम एस वेंकटरैड्डी, (2010)**

1 एससीसी 756 में पुनः दोहराया, जो इस प्रकार है:

"22. यह एक स्थापित विधिक प्रस्ताव है कि मूल आदेश/वैधानिक प्रावधान को चुनौती दिए बिना परिणामी आदेश को चुनौती नहीं दी जा सकती जिसके आधार पर आदेश पारित किया गया है। इसलिए, मूल आदेश को चुनौती देना पक्ष की ओर से एक विधिक दायित्व है और केवल अगर वह गलत पाया जाता है, तो परिणामी आदेश की जांच की जा सकती है (पी. चित्रजा मेनन बनाम ए. बालकृष्णन [(1977) 3 एससीसी 255: 1977 एससीसी (एल एंड एस) 378: एआईआर 1977 एससी 1720]; एच.वी. पारदासानी बनाम भारत संघ के माध्यम से [(1985) 2 एससीसी 468: 1985 एससीसी (एल एंड एस) 482: एआईआर 1985 एससी 781]; और महाराष्ट्र सरकार बनाम देवकर डिस्टिलरी [(2003) 5 एससीसी 669: एआईआर 2003 एससी 1216])।"

29. सर्वोच्च न्यायालय ने लगातार यह विचार रखा है कि एक परिणामी आदेश पर अलग से आक्रमण नहीं किया जा सकता है, जैसा कि **धनराज बनाम विक्रम सिंह एवं अन्य, 2023**



एससीसीऑनलाइन एससी 724 में देखा गया, जहां सर्वोच्च न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया है कि:

“हमारा विचार है कि वैधानिक प्रावधानों की वैधता के लिए किसी विशेष चुनौती के अभाव में, उच्च न्यायालय को प्रतिकूलता के प्रश्न पर विचार करने का अभ्यास नहीं करना चाहिए। हम इस अवलोकन के औचित्य को समझने में विफल हैं कि राज्य और केंद्र के विधि विभागों को विसंगति को दूर करने के लिए बातचीत करनी चाहिए।”

30. वर्तमान वाद में, आक्षेपित आदेश प्रकृति में प्रशासनिक हैं और स्वयं व्यक्तिगत वादियों के अधिकारों पर निर्णय नहीं देते हैं और आदेश विधि के अनुसार पारित किए जाते हैं जैसा कि ऊपर चर्चा किए गए वैधानिक प्रावधानों से प्रतीत होता है।

31. उपरोक्त चर्चा को ध्यान में रखते हुए, हम भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 के अंतर्गत क्षेत्राधिकार का प्रयोग करने के इच्छुक नहीं हैं। जिस वैधानिक प्रावधान के द्वारा इसे पारित किया गया है, उसकी वैधता के लिए किसी भी चुनौती के अभाव में आक्षेपित आदेशों को चुनौती देना स्वीकार्य नहीं है, और इसके अलावा, स्थापित सिद्धांत को लागू करते हुए कि असंगतता के स्थिति में बाद का अधिनियम पूर्व के अधिनियम पर लागू होता है, ग्राम न्यायालय अधिनियम, 2008 की धारा 16 के अंतर्गत परिवार न्यायालय अधिनियम, 1984 के अंतर्गत गठित परिवार न्यायालय से ग्राम न्यायालय में भरण-पोषण की कार्यवाही का स्थानांतरण वैध माना जाता है।

32. तदनुसार, दोनों रिट याचिकाएं **खारिज** की जाती हैं। वाद व्यय के संबंध में कोई आदेश नहीं है।

(न्यायमूर्ति स्वरूपमा चतुर्वेदी) (न्यायमूर्ति अजीत कुमार)

24 मार्च, 2026

शिव